

रागाद्यास्रव-रोधतो निजधुरां धृत्वा परः सम्बरः,
कर्मागामि समस्तमेव भरतो दूरान्निरुन्धन् स्थितः ।
प्राग्बद्धं तु तदेव दग्धु-मधुना व्याजृम्भते निर्जरा,
ज्ञानज्योति-रपावृतं न हि यतो रागादिभिर्मूर्च्छति ॥१३३॥

अब, सर्व स्वाँग को यथार्थ जाननेवाले सम्यक्ज्ञान को मंगलरूप जानकर आचार्यदेव मंगल के लिये प्रथम उसी-निर्मल ज्ञानज्योति को ही-प्रगट करते हैं:- सम्यग्ज्ञान, मांगलिक करते हैं। परम संवर,... शब्द यहाँ आया है। इसमें देखो तो क्या कि, वह एकदम केवल लेना है न, पूर्ण की बात है। परम संवर,... उत्कृष्ट संवर है। नीचे चौथे गुणस्थान में सम्यग्दर्शन और स्वरूप की स्थिरता का अंश है, उतना संवर है। पाँचवें में संवर विशेष है, छठवें में विशेष है परन्तु यहाँ तो पहला [परः संवरः] परम

संवर,... शब्द पड़ा है। मांगलिक करते हुए (कहते हैं), परम संवर (अर्थात्) उत्कृष्ट संवर। एकदम सब कर्म आते हुए रुक जायें, ऐसा संवर। समझ में आया इसमें ?

आत्मा पूर्ण आनन्ददल है, अनन्त-अनन्त अन्वय शक्तियों का पिण्ड है, उसका भान तो हुआ, परन्तु उसमें स्थिरता विशेष हुई, ऐसा कहते हैं। भान हुआ, वहाँ से उतना तो संवर हुआ, परन्तु वह 'परः संवरः' उत्कृष्ट संवर नहीं है। मांगलिक में उत्कृष्ट संवर कहना चाहते हैं। समझ में आया ? यह शब्द अर्थ में पड़ा है। यहाँ अर्थ किया है—परम संवर... आहाहा! आनन्दस्वरूप भगवान अनन्त-अनन्त शक्तियाँ, जो अन्वयशक्तियाँ हैं, जैसे द्रव्य अन्वय है, वैसे अनन्त-अनन्त शक्तियाँ, उनका पिण्ड जो प्रभु, उसे जिसने उत्कृष्टरूप से पकड़ा है और स्थिर हुआ है, उसे यहाँ परम संवर कहते हैं। आहाहा!

बाकी तो परम संवर के सामने लें तो परम आस्रव। अनन्त-अनन्त काल में परम उत्कृष्ट आस्रव मिथ्यात्व आदि का अनन्त संसार का आस्रव हुआ है। आहाहा! नरक और निगोद के भव याद करते हुए, उनका आस्रव और उनका दुःख सुना न जाए, ऐसे इसने दुःख सहन किये हैं। आहाहा! यहाँ जरा सी प्रतिकूलता आवे, वहाँ मानो मैं ऐसा उपाय करूँ और ऐसा उपाय करूँ, ऐसा उपाय करूँ। बाहर की थोड़ी प्रतिकूलता आने पर (ऐसा होता है)। वह अनन्त प्रतिकूलता! आहाहा! जहाँ भगवान आत्मा अकेला आनन्द और शान्त सागर (विराजता है), उससे विमुख और आस्रव से सन्मुख; मिथ्यात्व, अज्ञान, अव्रतादि जो आस्रव के परिणाम, उनमें सन्मुख बहुत दुःखी है। आहाहा! यहाँ एक जरा सी हवा सरीखी न आवे, दरवाजा बन्द हो और पर्दा वह हो, वहाँ आकुल-व्याकुल हो जाता है। आहाहा! अरे! हवा (आती) नहीं अच्छी। स्वभाव से विरुद्ध भाव, वह संयोगी भाव, वह दुःख है। वह दुःख इसने अनन्त सहन किये हैं, भाई! आहाहा! उन दुःखों को छोड़ने का परम उपाय संवर है।

शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा, परम अनाकुल आनन्द का पूर, ज्ञान का नूर और आनन्द का पूर, ऐसा प्रभु आत्मा... आहा! जिसमें आस्रव से विमुख होकर स्व-स्वभाव में सन्मुख होकर परम संवर जिसने प्रगट किया है... आहाहा! वह सुख के पन्थ में पड़ा है। बाकी मिथ्यात्व और अव्रत और कषाय के पन्थ में (पड़े हैं), वे दुःख के पन्थ में हैं। बाहर

में भले अनुकूलता दिखायी दे और पागल लोग कहें कि यह सुखी है (परन्तु) वह सुखी नहीं। सुख तो आत्मा में है, बाकी कहीं नहीं। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, पूर्ण आनन्द से भरपूर, वह आनन्द उसे बाह्य संयोगों में तो नहीं परन्तु शुभ और अशुभभाव में भी आनन्द नहीं है। आहाहा! यहाँ तो आस्रव में आनन्द नहीं और संवर में आनन्द है, वह 'परम संवर' पहला शब्द आया न? (वह) महामांगलिक है। आहाहा!

यह अज्ञानरूप से जो मिथ्याश्रद्धा (का सेवन कर)... एकदम वस्तु भगवान् पूर्ण स्वरूप, चैतन्य बादशाह, उससे विमुख होकर और राग के भाव के सन्मुख होकर मिथ्यात्व आदि आस्रव को सेवन किया, वे दुःख सहे नहीं गये। सहे हैं परन्तु सहे गये नहीं अर्थात् ऐसी चीज़ थी। आहाहा! वह सातवें नरक के नारकी के दुःख, एक श्वास में उसकी अनन्तगुणी पीड़ा इतनी कि एक श्वास की पीड़ा... आहाहा! करोड़ों भव और करोड़ों जीभ से न कही जा सके। ऐसे दुःख इसने सहन किये हैं। वह स्वरूप की विपरीत मान्यता और विपरीत आचरण (के कारण से सहन किये हैं)।

यह यहाँ कहते हैं कि अब स्वरूप का अविपरीत आचरण... आहाहा! परम संवर (प्रगट हुआ)। भगवान् पूर्णानन्दस्वरूप प्रभु को पकड़कर आनन्द के वेदन में आने पर... परन्तु यहाँ तो उत्कृष्ट संवर लेना है कि जो परम संवर है। यहाँ से मांगलिक शुरु किया है। परम संवर! आहाहा! 'रागादि-आस्रव-रोधतः' रागादि आस्रवों को रोकने से... है न? उसमें सब रोकने से, ऐसा (लिया है)। अमुक रोका, ऐसा कुछ नहीं। आहाहा! राग, द्वेष, विषयवासना इत्यादि आस्रव है, उन्हें रोकने से... आहाहा! आनन्द की वासना-गन्ध आयी, वासना आयी। आहाहा! आनन्द में वास रहने से आनन्द की वासना लेने से, रागादि आस्रव रोकने से। उसे रागादि आस्रव रुकते हैं। यह बाहर से ले कि हमारे आस्रव सेवन नहीं करना और प्रत्याख्यान है, उससे कहीं आस्रव नहीं रुकते। आहाहा! अन्दर पूर्णानन्द के नाथ में छिद्र पड़े हैं। 'यह मैं नहीं और राग, पुण्य और पाप मेरे', आहाहा! (इसमें) परम दुःख, परम आस्रव है। उसे परम संवर! उन रागादि को परम संवर द्वारा रोककर। यह अमुक क्रिया करने से रागादि आस्रव रोकना, ऐसा नहीं आया। आहाहा! परम संवर से रागादि आस्रव को रोकने से। आहाहा!

‘निज-धुरां धृत्वा’ अपना स्थान, अपनी मर्यादा को धारण किया है। अर्थात् कि नये आस्रव नहीं आते, ऐसी उसने—संवर ने अपनी कार्य धुरा हाथ में ली है। अपना यह कार्य सम्हाला है कि नया कर्म आवे नहीं, ऐसा संवर ने कार्य सम्हाला है। आहाहा! पंचम काल के साधु, पंचम काल के श्रोता को यह बात करते हैं। परम संवर, रागादि आस्रवों को रोकने से... ‘निज-धुरां’ (अर्थात्) अपना कार्य। संवर का कार्य, संवर का जो हौदा है, संवर का हौदा, वह कार्य है इन रागादि रोकने का। आहाहा! वह संवर का हौदा है, मर्यादा है। आहाहा!

(-अपने कार्य को यथार्थतया सँभालकर) समस्त आगामी कर्म को... है न? समस्त आगामी कर्म लिया है। इसलिए ‘परम’ शब्द लिया है। आहाहा! यहाँ तो एकदम आचार्य ने संवर होकर, एकदम निर्जरा होकर केवलज्ञान हो, ऐसा मांगलिक किया है। आहाहा! समस्त आगामी कर्म को... ‘भरतः दूरात् एव’ अत्यन्ततया दूर से ही... आहाहा! ‘भरतः’ अपनी महिमा से। संवर की महिमा ऐसी है। आहाहा! आहाहा! कि जिसमें आस्रव रुक जाता है, ऐसी उसकी महिमा है। बड़ा व्यक्ति हो, उसके पास साधारण व्यक्ति आ नहीं सकता। बात करने आ नहीं सकता। उसी प्रकार यह संवर ऐसी दशा है, महिमा इतनी है कि जिसमें आस्रव आ नहीं सकता। आहाहा!

अत्यन्ततया दूर से ही... ‘निरुन्धन् स्थितः’ संवर आगामी समस्त कर्म को रोकता हुआ खड़ा है;... ऐसा कहा न? आहाहा! संवर समस्त आगामी कर्म को रोकता हुआ खड़ा है। आहाहा! देखो, आचार्य का मांगलिक! निर्जरा (अधिकार शुरु) करते हुए पहले मांगलिक करते हैं। आहाहा! अत्यन्ततया दूर से ही रोकता हुआ खड़ा है;... दूर से अर्थात्? कि आते हैं और फिर रोका है, ऐसा नहीं। आहाहा! उस स्वरूप में इतनी दृष्टि (देकर) स्थिर हुआ है कि जो आस्रव नाममात्र भी नहीं आता। आहाहा! ऐसा ही प्रभु का स्वरूप है। आहाहा! सच्चिदानन्द प्रभु शाश्वत् चिदानन्दधाम ऐसा आत्मा, उसका स्वरूप ही ऐसा है कि जिस स्वरूप की दृष्टि और सम्हाल होने पर, आगामी आस्रव... आहाहा! रोकता हुआ, दूर से रोकता हुआ (खड़ा है)। ऐसा। ऐसा है न? ‘दूरात् एव’ ‘दूरात्’ का अर्थ—‘अत्यन्त रूप से’ किया है। अत्यन्त से अर्थात् अपनी महिमा से आस्रव को रोकता

हुआ, अटकाता हुआ। 'निरुन्धन् स्थितः' रोकता हुआ खड़ा है;... और अब, जो पूर्व में संवर होने से पहले बँधा हुआ कर्म; अब निर्जरा की व्याख्या करते हैं।

'प्राग्बद्धं' 'प्राग्बद्धं' 'प्राग' अर्थात् पूर्व में। आहाहा! 'बद्धं' अर्थात् बँधा हुआ कर्म है। 'तत् एव दग्धुम्' कर्म को जलाने के लिये... उसे जलाने के लिये अब। आहाहा! इसका अर्थ यह कि कर्मरूपी पर्याय है, उसे अकर्मरूपी पर्याय होने का उसका (काल है)। उसे जलाने को, ऐसा कहने में आता है। जलावे-जलावे क्या, कहीं कोई वस्तु जलती है? आहाहा! जो परमाणु की कर्मरूप पर्याय है, वह अकर्मरूप होती है, ऐसा उसका उस समय में स्वभाव है, उसे यहाँ 'जलाने को' ऐसा अर्थ किया है। आहाहा! कर्म का नाश करके। नाश करके, उसका अर्थ यह। स्वयं स्वरूप में स्थिर और आनन्द में मग्न है, इसलिए उसे नया कर्म (नहीं बँधता)। आहाहा! पूर्वबद्ध (संवर होने के पहले)... बन्ध था, उसे (कर्म को) जलाने के लिये... कर्म को जलाना होगा? और कर्म जलते होंगे? कोई द्रव्य जलता है? किसी द्रव्य की पर्याय जलती है? वह कर्मरूप जो पर्याय थी, उसे आत्मा के आनन्द के स्वभाव की उग्रता से वह पर्याय अकर्मरूप हुई, उसे जलाया, ऐसा कहने में आता है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह सब स्पष्टीकरण आपने किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! यह वस्तु है। दिगम्बर सन्तों की वाणी बहुत गम्भीर, बहुत गम्भीर! भाषा सादी आयी है परन्तु... आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य ने अकेला अमृत प्रवाहित किया है! प्रभु! तू अमृत का सागर है न! तेरी अन्वयशक्तियाँ जीवित, जीवित ज्योति है। आहाहा! उसमें कोई शक्ति मरे, मुरझावे, घटे—ऐसा है नहीं। आहाहा! अनन्त-अनन्त शक्तियाँ अन्दर (भरी हैं)।

कल दोपहर को आया था न? अनन्त-अनन्त अन्वय शक्तियाँ। द्रव्य जो है, उसका द्रव्यत्वपना अर्थात् अनन्त-अनन्त शक्तियों का सत्त्वपना, सत् है, वस्तु सत् है, उसका अनन्त गुणपना जो सत्त्वपना है, आहाहा! उसके जोर से कर्म को जलाना। आहाहा! अब निर्जरा (-निर्जरारूपी अग्नि) फैल रही है... पूर्व का बँधा हुआ कर्म है, वह छूट जाता है—ऐसा कहते हैं। उपदेश तो ऐसे दिया जाए न! दूसरा क्या? वास्तव में तो वह आत्मा जहाँ

स्वरूप में स्थिर होता है, तब उस परमाणु की अकर्मरूप पर्याय होने का वह समय है। आहाहा! उसे यहाँ जलाता है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा!

निर्जरा फैलती है, वह फैलती है, कहते हैं। अब शुद्धता बढ़ती है। संवर में शुद्धता थी, निर्जरा में शुद्धता बढ़ती है। निर्जरा की व्याख्या ही यह है—शुद्धि की वृद्धि। जो शुद्धस्वरूप पूर्णानन्द प्रभु है, उसकी दृष्टि होने पर अकेली शुद्धि तो उत्पन्न हुई परन्तु अब निर्जरा में शुद्धि की वृद्धि होती है और शुद्धि की पूर्णता हो, उसका नाम मोक्ष। शुद्धि की उत्पत्ति, पुण्य-पाप के भावरहित, शुद्धि की उत्पत्ति, वह संवर; शुद्धि की वृद्धि, वह निर्जरा; शुद्धि की पूर्णता, वह मोक्ष। आहाहा!

निर्जरा (-निर्जरारूपी अग्नि) फैल रही है... आहाहा! ऐसा लिखा न? आहा! 'निर्जरा व्याजृम्भते' 'दग्धुम्' वहाँ ऐसा है न? जिससे ज्ञानज्योति... भगवान् चैतन्य ज्योति, चैतन्य प्रकाश जिसका पूर्ण प्रकाशस्वभाव शक्ति है, ऐसी जो ज्ञानज्योति निरावरण होती हुई... संवरपूर्वक जहाँ निर्जरा हुई अर्थात् ज्ञानज्योति निरावरण हुई। निरावरण के दो अर्थ—जो अशुद्धता थी, उससे आवरणरहित हुई और कर्म निमित्त था, उससे आवरणरहित हुई। शुद्धि की वृद्धि तो हुई; अशुद्धता टल गयी और कर्म टल गया। आहाहा! वह निरावरण हुई। आहाहा!

जिससे ज्ञानज्योति... फैल रही है 'रागादिभिः न हि मूर्च्छति' यहाँ तो यह सिद्धान्त (कहना है)। जो रागादि से रुकी हुई थी, वह शुद्ध संवर द्वारा राग को आना रोका परन्तु पूर्व में बँधा हुआ था, उसे ज्ञानज्योति ने निरावरण कर डाला, आवरण का नाश कर डाला। वह रागादिभावों द्वारा मूर्च्छित नहीं हुई। अब राग में नहीं रुकती। आहाहा! पहले जो स्वरूप जो शुद्ध आनन्दस्वरूप, वह राग में रुकता था, वह राग में रुकता नहीं, अकेला वीतरागभाव में रुक गया है। आहाहा! पूर्ण संवर हो गया। इस प्रकार मांगलिक किया है।

रागादिभावों के द्वारा मूर्च्छित नहीं होती—सदा अमूर्च्छित रहती है। यह क्या कहा? सदा, जब से निरावरण हुई, वह अनन्त काल अमूर्च्छित रहती है। आहाहा! भगवान् चैतन्य ज्योति तो निरावरण पड़ी ही है। वस्तु तो त्रिकाल सदा, त्रिकाल निरावरण वस्तु है। पर्याय में जो अशुद्धता का आवरण था, कर्म का तो निमित्त था... आहाहा! वह सदा त्रिकाल

निरावरण वस्तु, वह पर्याय में निरावरण हो गयी। आहाहा! त्रिकाली भगवान आत्मा वह सकल निरावरण है। उसे कभी द्रव्य को आवरण है नहीं। पर्याय में जो अशुद्धता का आवरण था और कर्म का-निमित्त का (आवरण था), वह तो निमित्त है, उसके साथ वास्तव में कुछ (सम्बन्ध नहीं है), वह तो उसके कारण बँधता है, उसके कारण उस काल में छूटता है। आहाहा! रागादिभावों के द्वारा मूर्च्छित नहीं होती-सदा अमूर्च्छित रहती है। लो!

भावार्थ : संवर होने के बाद नवीन कर्म तो नहीं बँधते। जितने अंश में अन्दर में शुद्धत्मा में आ गया, उतने अंश में तो उसमें आवरण आता नहीं। जो कर्म पहले बँधे हुए थे, उनकी जब निर्जरा होती है... पश्चात् तो पूर्व का जो था, वह तो खिर जाता है। आत्मा के ऊपर, ध्यान के ऊपर है, इसलिए संवर है और उदय आता है, वह खिर जाता है। तब ज्ञान का आवरण दूर होने से... स्वरूप में आवरण अशुद्धता का था और (कर्म का) आवरण निमित्त था, (वह) दूर होने से वह (ज्ञान) ऐसा हो जाता है कि पुनः रागादिरूप परिणमित नहीं होता... आहाहा! एक बार भी रागादिरहित दशा हुई, वह फिर से रागरूप नहीं होता। ऐसा सदा प्रकाशरूप ही रहता है। अकेला चैतन्य प्रकाश जलहल ज्योति शक्ति का जो सामर्थ्य, वह पर्याय में सब सामर्थ्य प्रगट हो गया, ऐसा कहते हैं। सदा प्रकाशरूप ही रहता है। पर्याय में सदा प्रकाशरूप रहता है। त्रिकाल तो सदा प्रकाशरूप था ही। वस्तु है, वह तो त्रिकाल प्रकाशरूप है ही, परन्तु पर्याय में जो जरा अशुद्धता और आवरण कर्म का निमित्त था, वह दूर होकर सदा प्रकाशरूप रहता है। अब पर्याय सदा प्रकाशरूप रहती है। वह वस्तु तो सदा प्रकाशरूप थी ही। आहाहा! परन्तु उसका आश्रय और अवलम्बन और सन्मुख होने पर सदा के लिये प्रकाशरूप ही रहती है। ऐसा मांगलिक किया, लो! आहाहा!

गाथा - १९३

उवभोग-मिन्दियेहिं दव्वाण-मचेदणाण-मिदराणं ।
जं कुणदि सम्मदिट्ठी तं सव्वं णिज्जर-णिमित्तं ॥१९३॥

उपभोग-मिन्द्रियैः द्रव्याणा-मचेतनाना-मितरेषाम् ।
यत्करोति सम्यग्दृष्टिः तत्सर्वं निर्जरा-निमित्तम् ॥१९३॥

विरागस्योपभोगो निर्जरायै एव । रागादिभावानां सद्भावेन मिथ्यादृष्टेरचेतनान्य-
द्रव्योपभोगो बन्धनिमित्तमेव स्यात् । स एव रागादिभावानामभावेन सम्यग्दृष्टेर्निर्जरानिमित्तमेव
स्यात् ।

एतेन द्रव्यनिर्जरास्वरूपमावेदितम् ॥१९३॥

अब द्रव्यनिर्जरा का स्वरूप कहते हैं:-

चेतन अचेतन द्रव्य का, उपभोग इन्द्रियसमूह से।
जो जो करे सदृष्टि वह सब, निर्जराकारण बने ॥१९३॥

गाथार्थ : [सम्यग्दृष्टिः] सम्यग्दृष्टि जीव [यत्] जो [इन्द्रियैः] इन्द्रियों के द्वारा
[अचेतनानाम्] अचेतन तथा [इतरेषाम्] चेतन [द्रव्याणाम्] द्रव्यों का [उपभोगम्]
उपभोग [करोति] करता है, [तत् सर्वं] वह सर्व [निर्जरानिमित्तम्] निर्जरा का निमित्त है।

टीका : विरागी का उपभोग निर्जरा के लिये ही है, (वह निर्जरा का कारण होता
है)। रागादि भावों के सद्भाव से मिथ्यादृष्टि के अचेतन तथा चेतन द्रव्यों का उपभोग
बंध का निमित्त होता है; वही (उपभोग), रागादिभावों के अभाव से सम्यग्दृष्टि के लिए
निर्जरा का निमित्त होता है। इस प्रकार द्रव्यनिर्जरा का स्वरूप कहा।

भावार्थ : सम्यग्दृष्टि को ज्ञानी कहा है और ज्ञानी के राग-द्वेष-मोह का अभाव
कहा है; इसलिए सम्यग्दृष्टि विरागी है। यद्यपि उसके इन्द्रियों के द्वारा भोग दिखायी
देता हो, तथापि उसे भोग की सामग्री के प्रति राग नहीं है। वह जानता है कि 'यह (भोगों
की सामग्री) परद्रव्य है, मेरा और इसका कोई सम्बन्ध नहीं है; कर्मोदय के निमित्त से
इसका और मेरा संयोग-वियोग है।' जब तक उसे चारित्रमोह का उदय आकर पीड़ा
करता है और स्वयं बलहीन होने से पीड़ा को सहन नहीं कर सकता, तब तक-जैसे रोगी

रोग की पीड़ा को सहन नहीं कर सकता, तब उसका औषधि इत्यादि के द्वारा उपचार करता है; इसी प्रकार-भोगोपभोग सामग्री के द्वारा विषयरूप उपचार करता हुआ दिखाई देता है; किन्तु जैसे रोगी रोग को या औषधि को अच्छा नहीं मानता; उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि चारित्रमोह के उदय को या भोगोपभोग सामग्री को अच्छा नहीं मानता। और निश्चय से तो, ज्ञातृत्व के कारण सम्यग्दृष्टि विरागी उदयागत कर्मों को मात्र जान ही लेता है, उनके प्रति उसे राग-द्वेष-मोह नहीं है। इस प्रकार राग-द्वेष-मोह के बिना ही उनके फल को भोगता हुआ दिखाई देता है, तो भी उसके कर्म का आस्रव नहीं होता, कर्मास्रव के बिना आगामी बन्ध नहीं होता और उदयागतकर्म तो अपना रस देकर खिर ही जाते हैं क्योंकि उदय में आने के बाद कर्म की सत्ता रह ही नहीं सकती। इस प्रकार उसके नवीन बन्ध नहीं होता और उदयागत कर्म की निर्जरा हो जाने से उसके केवल निर्जरा ही हुई। इसलिए सम्यग्दृष्टि विरागी के भोगोपभोग को निर्जरा का ही निमित्त कहा गया है। पूर्व कर्म उदय में आकर उसका द्रव्य खिर गया, सो वह द्रव्यनिर्जरा है।

गाथा - १९३ पर प्रवचन

अब द्रव्यनिर्जरा का स्वरूप कहते हैं:- अब गाथा।

उवभोग-मिंदियेहिं दव्वाण-मचेदणाण-मिदराणं।

जं कुणदि सम्मदिट्ठी तं सव्वं णिज्जर-णिमित्तं॥१९३॥

चेतन अचेतन द्रव्य का, उपभोग इन्द्रियसमूह से।

जो जो करे सदृष्टि वह सब, निर्जराकारण बने॥१९३॥

टीका : विरागी का उपभोग.. जहाँ राग का रस रहा नहीं, जहाँ विकल्प में सुखबुद्धि उड़ गयी है और जहाँ सच्चा सुख है, वहाँ सुखबुद्धि हुई है। आहाहा! जिसमें आनन्द है, वहाँ आनन्दबुद्धि हुई है और विकल्पमात्र से लेकर पर में से सुखबुद्धि उड़ गयी है। सम्यक्त्वी को शरीर में, इन्द्रियों में, विषयों में, भोग में, स्त्री में, कुटुम्ब में, इज्जत में कहीं रस नहीं है। आहाहा! कहीं उसे अन्दर का रस-प्रेम नहीं है। आसक्ति / अस्थिरता है, वह अलग वस्तु है।

विरागी का उपभोग.. आहाहा! निर्जरा के लिये ही है.. यह द्रव्यनिर्जरा। कर्म,

कर्म, कर्म। (वह निर्जरा का कारण होता है)। विरागी का उपभोग निर्जरा अर्थात् कर्म के खिरने का कारण होता है। वैरागी उसे कहते हैं कि जिसे सम्यग्दर्शनसहित पुण्य-पाप से विरक्त बुद्धि हुई है, उसे विरागी कहते हैं। वैरागी अर्थात् बाहर से छूटकर दुकान छोड़ी, धन्धा छोड़ा, इसलिए वैरागी – ऐसा नहीं है। आहाहा! जिसे भगवान आत्मा, पूर्णानन्द के भान में प्रतीति के अनुभवसहित पुण्य और पाप के भाव से वैराग्य-विरक्त है, ऐसा वैरागी, उसे वैरागी कहा जाता है। आहाहा! उस विरागी का उपभोग निर्जरा के लिये ही है...

रागादि भावों के सद्भाव से मिथ्यादृष्टि के अचेतन तथा चेतन द्रव्यों का उपभोग बन्ध का निमित्त होता है;.. आहाहा! रागादि के सद्भाव से (अर्थात्) मिथ्यादृष्टि-राग में प्रेम माननेवाला, राग में सुख माननेवाला, राग में उत्साहित वीर्य होने से, उल्लसित वीर्य राग में होनेवाले मिथ्यादृष्टि को... आहाहा! अचेतन तथा चेतन द्रव्यों का उपभोग.. चाहे तो अचेतन को भोगे या चेतन को (भोगे, वह) बन्ध का निमित्त होता है;.. आहाहा!

वही (उपभोग),.. यहाँ जो सचेत-अचेत दोनों लिया। इसलिए कोई ऐसा कहे कि यह बात मुनि के लिये है (तो) यहाँ सचेत को भोगता है, उसकी बात ली है। समझ में आया? अचेत को तो ठीक परन्तु सचेत को भोगता है। आहाहा! परन्तु वैराग्य के कारण रस उड़ गया है। कहीं रस-प्रेम है नहीं। सचेत स्त्री, सचेत पुत्र, पुत्रियाँ, यह सचेत का उपभोग उसे होता है, कहते हैं। सचेत और अचेत का (उपभोग) कहा न? मिथ्यादृष्टि को अचेतन और चेतन द्रव्यों का उपभोग बन्ध का निमित्त ही होता है और वही (उपभोग),.. वही उपभोग, कहा न? वह सचेत और अचेत। आहाहा!

रागादिभावों के अभाव से.. आहाहा! यहाँ तो सम्यग्दृष्टि की महिमा का वर्णन है, बाकी जो उपभोग है अर्थात् राग है, वह बन्ध का कारण है। उस बात को यहाँ गौण करके, शुद्धस्वभाव महाप्रभु जहाँ दृष्टि में आया, भगवान की भेंट हुई.... आहाहा! उसे अब चेतन और अचेतन का उपभोग कर्म की निर्जरा का कारण है। ऐसा कहने से कोई स्वच्छन्दी होकर ऐसा कहे कि हम चाहे जिस प्रकार भोगें, ऐसा नहीं है। परन्तु कोई ऐसा होता है, सचेत-अचेत का योग होता है। आहाहा!

वही (उपभोग),.. कहा न? वही अर्थात्? चेतन और अचेतन कहा वह। ऊपर कहा न? मिथ्यादृष्टि के अचेतन तथा चेतन द्रव्यों का उपभोग.. एक ओर ऐसा कहे

कि आत्मा परद्रव्य को भोग ही नहीं सकता। हैं? आहाहा! सचेत, अचेत को स्पर्श ही नहीं कर सकता। आहाहा! कोई भी आत्मा सचेत स्त्री का आत्मा या उसका शरीर या पैसा, लक्ष्मी या इज्जत को आत्मा स्पर्श ही नहीं कर सकता। स्पर्श किये बिना उसे उपभोग किस प्रकार है? आहाहा! परन्तु उसकी ओर के लक्ष्य से जो रागादि हुए, उन्हें भोगता है, वह सचेत और अचेत को भोगता है – ऐसा आरोप से कथन है। आहाहा! ऐसी शैली है।

वही (उपभोग),.. कोई ऐसा कहे कि इसमें यह गाथा तो मुनि के लिये हैं। मुनि के लिये भी है अन्दर। उसे सचेत शिष्य आदि उसका अर्थ है, परन्तु यहाँ तो चौथे गुणस्थान से सचेत-अचेत की बात ली है। उसके प्रमाण में, हों! आहाहा! बाकी सचेत-अचेत की व्याख्या बहुत की थी। मुनि के लिए सचेत शिष्य; मिश्र, वह उपकरण होते हैं न? वह अचेतन उपकरण है, मोरपिच्छी इत्यादि अचेत; वह सचेतन; अचेत को वहाँ तक ले गये और आगे जाने पर सचेत अर्थात् राग। वहाँ तक ले गये हैं। ज्ञानी को राग का भी उपभोग नहीं है। आहाहा!

वही (उपभोग),.. अर्थात् वही सचेत और अचेत वस्तु का। द्रव्यों का है न? चेतन द्रव्यों का उपभोग.. ऐसा शब्द है। द्रव्य की पर्याय में राग हो, उसका उपभोग, ऐसी भाषा नहीं की है। कहने का आशय तो यह है। आहाहा! एक ओर कहते हैं कि आत्मा पर्याय को भी स्पर्श नहीं करता। पर्याय, राग को स्पर्श नहीं करती; राग, कर्म के उदय को स्पर्श नहीं करता; राग, परद्रव्य को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! क्या अपेक्षा है इसमें? यह तो प्रभु का अनेकान्तवाद है न! अनेकान्त अर्थात् इसमें अनन्त-अनन्त अपेक्षाएँ, धर्म हैं। है, इसमें है उसमें की, हों! अनेकान्त का ऐसा अर्थ नहीं है कि व्यवहार से निश्चय होता है और निमित्त से भी होता है। यह अनेकान्त धर्म नहीं है।

किन्तु इस प्रकार से सम्यक्त्वी का भोग निर्जरा का हेतु है, ऐसा इसमें से कहना है न? भोग निर्जरा का हेतु होवे तो फिर चारित्र अंगीकार करने की आवश्यकता रही नहीं। है? आहाहा! ऐसा नहीं है। यहाँ तो दृष्टि का महात्म्य बतलाना है। बाकी तो जितने अंश में अस्थिरता का अंश कमजोरी है, वह दुःख है, आस्रव है, ज्ञानी को वह बन्ध का कारण है। आहाहा! यहाँ तो उसके उपभोग में द्रव्य का लक्ष्य होता है; इसलिए उसे द्रव्य का उपभोग कहा गया है। आहाहा! बाकी द्रव्य को कौन भोगे? आहाहा!

अज्ञानी या ज्ञानी कोई (भी) परद्रव्य को स्पर्श नहीं कर सकता (तो) भोगे किस प्रकार? कैसे? – कि एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य के बीच अत्यन्ताभाव है। अत्यन्त-अभाव में परद्रव्य को भोगे (–ऐसा नहीं हो सकता)। आहाहा! पाठ तो ऐसा है। अचेतन तथा चेतन द्रव्यों का उपभोग.. ऐसा कहा है न? उसके परिणाम हुए – ऐसी बात नहीं है। आहाहा! इसका अर्थ तो यही है, परन्तु (इसका) लक्ष्य वहाँ पर के ऊपर है, इसलिए उनका भोगना है – ऐसा कहने में आता है। आहाहा! बाकी तो ज्ञानी को राग का, शुभराग का अनुभव जहाँ दुःखरूप है, (वहाँ अशुभ का अनुभव तो दुःखरूप ही है)। आहाहा! चौथे गुणस्थान से शुभराग दुःखरूप है, उसका वेदन (दुःखरूप है), बाद की गाथा में कहेंगे। सुख-दुःख का वेदन होता है और फिर खिर जाता है। आहाहा! वह भावनिर्जरा कहेंगे। यह तो द्रव्यनिर्जरा है। आहाहा!

विरागी का उपभोग निर्जरा के लिये ही है.. लिये 'ही' है। देखा? वापस फिर 'ही' एकान्त (किया)। (वह निर्जरा का कारण होता है)। रागादि भावों के सद्भाव से.. जिसे परपदार्थ के प्रति प्रेम है, राग है, उसमें सुखबुद्धि है, उसमें उल्लसित, स्वभाव से अधिकता जिसे अन्दर पर में भासित होती है। आहाहा! ऐसे मिथ्यादृष्टि को अचेतन तथा चेतन द्रव्यों का उपभोग बन्ध का (ही) निमित्त होता है; वही (उपभोग).. वही अचेतन-चेतन द्रव्यों का उपभोग, आहाहा! रागादिभावों के अभाव से.. यहाँ पहले दूसरी लाईन में कहा था न? रागादिभावों के अभाव से.. मिथ्यादृष्टि को। इसलिए इसमें ऐसा कहा कि रागादिभावों के अभाव से.. उसके सामने बात ली है। आहाहा! मिथ्यादृष्टि को पर का प्रेम है – सुखबुद्धि है, किसी भी छोटे-बड़े संयोग में या छोटे-बड़े रागादि में उसका वीर्य वहाँ उल्लसित हो जाता है, वहाँ आनन्द में आ जाता है। सुखी हूँ, मुझे अनुकूलता है, ऐसा आ जाता है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! लड़के छह-छह, आठ-आठ, बारह-बारह हों और पाँच-पाँच लाख कमाते हों... आहाहा! और दो-दो वर्ष में लड़का हुआ हो, लो! चौबीस वर्ष और यहाँ बीस वर्ष की (उम्र में विवाह हुआ हो), चौबालीस वर्ष हो, वहाँ बारह तो लड़के हों और कमाता हों और पैदा करता हो। हैं? है न बारह भाया, यहाँ वीछिया में? आहाहा!

मुमुक्षु : बारह भाईयों की गली है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : है न, बारह भाई हैं, स्थानकवासी हैं। उनका प्रमुख, बेचारे को यहाँ का प्रेम है। मकान अलग है। अपने वे भाई नहीं? कैसे? वीछियावाले प्रेमचन्दभाई। प्रेमचन्दभाई के मकान के पास उनका मकान है। बड़ा पक्का। परन्तु विरोध नहीं करते। प्रमुख है। यह वस्तु सुनने को मिले नहीं, भिन्नता कैसे है, किस प्रकार से है, यह बात अन्तर में बैठे नहीं, तब तक बाहर से यह दया पालते हैं, व्रत करते हैं, अपवास करते हैं; उसमें संवर और निर्जरा माने। दया और व्रत, वह संवर; तपस्या, वह निर्जरा। आहाहा!

यहाँ तो जो ज्ञानी का भोग है, वह रागादिभावों के अभाव से.. यहाँ तो बिल्कुल रागभाव का अभाव गिना है। राग का राग नहीं और राग का प्रेम नहीं, राग में सुखबुद्धि उड़ गयी है, इसलिए रागादिभावों के अभाव से.. इस अपेक्षा से (कहा है)। वरना जितना राग है, उतना बन्ध है। दसवें गुणस्थान तक राग का अंश है, राग आता है, होता है। निर्जरा का निमित्त (ही) होता है। कथंचित् निर्जरा और कथंचित् बन्ध - ऐसा नहीं। आहाहा! किस अपेक्षा से कहते हैं?

रागादिभावों के अभाव से सम्यग्दृष्टि के लिए निर्जरा का निमित्त (ही) होता है। समयसार नाटक में यह लिया है। ज्ञानी का भोग निर्जरा का हेतु है, ऐसा उसमें से लिया है। भोग का अर्थ (यह कि) अन्दर जरा राग आता है परन्तु उसमें सुखबुद्धि नहीं है, जहर है, जहर का प्याला पीता हूँ—ऐसा उसे लगता है। आहाहा! जहर का प्याला है। निर्विकल्प आनन्दरस के समक्ष यह शुभराग का कण भी जहर का... आहाहा! यह जहर की घूँट है। आहाहा! उसे राग में रस कैसे होगा? रागादिभावों के अभाव से सम्यग्दृष्टि के लिए निर्जरा का निमित्त (ही) होता है। एकान्त निर्जरा का निमित्त है, ऐसा कहते हैं। जरा भी बन्ध नहीं। किस अपेक्षा से बात है? दृष्टि का जोर है और दृष्टि में अकेला भगवान तैरता है। पूर्णानन्द का नाथ जहाँ आदर में आया... आहाहा! अनन्त-अनन्त आनन्द का दल, शान्ति का सागर, उपशमरस का समुद्र भरा है। उपशमरस, शान्तरस, अकषायरस! आहाहा! ऐसे स्वभाव से पूर्ण भरा है, प्रभु! उसका जहाँ अन्दर में आदर हुआ, अब उसे किसका आदर रहेगा? इस अपेक्षा से बात ली है।

सम्यग्दृष्टि के लिए निर्जरा का निमित्त (ही) होता है। यहाँ पाठ में सचेत, सचेत है या नहीं? 'दब्बाणमचेदणाणमिदराणं' दूसरा पद है। द्रव्य का अचेतन, द्रव्य

का अर्थात् चेतन। 'इदर' 'इदर' है न? अन्य 'उवभोगमिंदियेहिं' इन्द्रिय से उपभोग करना। किसका? 'दव्वाणम' किस द्रव्य का 'चेदणाणमिदराणं' अचेतन और चेतन, दो का। पाठ है या नहीं? आहाहा! 'जं कुणदि सम्मदिट्ठी' चेतन का जो 'सम्मदिट्ठी' भोग करता है। आहाहा! वह इन्द्रिय से। ऐसा हुआ न? 'उवभोगमिंदियेहिं' इन्द्रिय से सचेत स्त्री आदि का भोग ले। आहाहा! कन्दमूल खाये, हरितकाय खाये, कन्दमूल नहीं, वह तो हरितकाय खाये। आहाहा! कन्दमूल तो नहीं होता। वास्तव में तो रात्रिभोजन भी नहीं होता। रात्रिभोजन में जीवाँत है। जीवाँत। वह तो उसके योग्य जो है। ऐसा तो नहीं होता परन्तु उसके योग्य होता है, ऐसा राग आता है, तथापि उस राग की बुद्धि नहीं है, रुचि नहीं है, रस नहीं है, उल्लसित वीर्य नहीं है; वहाँ खेद वर्तता है। राग में ज्ञानी को खेद वर्तता है, इसलिए उसका उपभोग निर्जरा का निमित्त (कहा है)। दृष्टि के जोर से और दृष्टि का विषय भगवान पूर्णानन्द प्रभु, उसके आश्रय से वह कहा गया है। आहाहा!

इस प्रकार द्रव्य निर्जरा का स्वरूप कहा। पूर्व में जो परमाणु बँधे हुए हैं, उनका खिर जाना। द्रव्य निर्जरा जड़। जड़, जड़ का खिर जाना। आहाहा! निर्जरा का निमित्त होता है अर्थात् निमित्त कारण होता है, ऐसा। निर्जरा का कारण होता है। समझ में आया? नहीं तो ऐसा ले कि पूर्व का कर्म खिरता है, उसमें ज्ञानी का निमित्त ही है। खिरने में निमित्त है परन्तु यहाँ तो निर्जरा का निमित्त ही है, इसलिए निर्जरा का कारण ही है। आहाहा! कारण के अर्थ में है। आहाहा!

भावार्थ : सम्यग्दृष्टि को ज्ञानी कहा है... आहाहा! और ज्ञानी के राग-द्वेष-मोह का अभाव कहा है;... इस अपेक्षा से। अनन्तानुबन्धी का (अभाव हुआ है)। इसलिए सम्यग्दृष्टि विरागी है। सम्यग्दृष्टि विरागी है। आहाहा! वैरागी है अथवा विरागी है। अर्थात् रागरहित है। आहाहा! यद्यपि उसके इन्द्रियों के द्वारा भोग दिखायी देता हो, तथापि उसे भोग की सामग्री के प्रति राग नहीं है। देखा? इन्द्रियों द्वारा भोग होता है, पाठ है न? तथापि उसे भोग की सामग्री के प्रति राग नहीं है। आहाहा! वह जानता है कि 'यह (भोगों की सामग्री) परद्रव्य है, मेरा और इसका कोई सम्बन्ध नहीं है;...' देखा? परद्रव्य को और आत्मा को कोई सम्बन्ध नहीं है। नाता अर्थात् सम्बन्ध। आहाहा! मुझे और लड़के को तथा मुझे और स्त्री को तथा मुझे और शरीर, दूसरे को और

मुझे और पैसे को कोई सम्बन्ध नहीं है। यह मेरा पुत्र, यह सम्बन्ध ही नहीं है, कहते हैं समकिति को। आहाहा! यह सम्बन्ध ही टूट गया है। आहाहा! शशीभाई!

यह मेरी घरवाली है, कोई पूछे तो भाषा बोले। अन्दर में कुछ नहीं होता। मेरे घर में कोई है ही नहीं; मेरा घर तो मेरे पास है। आहाहा! ऐसा भेद अन्तर के भाव के कारण है, ऐसा कहते हैं। भाषा तो दूसरी क्या बोले? यह लड़का किसका है? (ऐसा पूछे तो कहे), मेरा लड़का है। कहे, भाषा ऐसी बोले। श्रीमद् ऐसा बोलते थे 'अमारो, अमारो कोट लाओ, अमारो यह लाओ।' अ-मारो, ऐसा। मेरा नहीं। कोई पूछता कि तुम अमारो अमारो, अकेले हो और अमारो क्यों बोलते हो? मेरा ऐसा कहो न, तुम अकेले हो। तुम अधिक लोग नहीं हो, वह अमारो, अमारो करते हो, अमारो कोट अर्थात् कोट हमारा नहीं, हमारा कपड़ा नहीं, हमारा घर नहीं, इसलिए अमारो ऐसा कहते हैं। मेरा नहीं, बापू! मेरा जो है, वह मेरे पास है, वह मुझसे भिन्न नहीं है। आहाहा! यह कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा!

'कर्मोदय के निमित्त से इसका और मेरा संयोग-वियोग है।' कर्म के निमित्त के कारण संयोग और निमित्त का वियोग हो जाता है। बाकी मुझे कोई सम्बन्ध नहीं है। विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)